# lekt ,oa lLÑfr

## e/; xxk dk enku e ¼800&1200½ b- lu

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

# lekt ,oa laLÑfr

## e/; xxk dh e/nku e ¼800&1200½ b- lu

Mk- vkuUn dqekj ;kno

नमूना • SAMPLE

अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस
दिल्ली (भारत)

*}kjk izdkf'kr*




**अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस**

*Publisher, Distributor, Exporter having an Online Bookstore*

एल–9ए, प्रथम तल, गली न0 42,
सादतपुर एक्सटेंसन, दिल्ली–110094 (भारत)
Phone : 9968628081, 9555149955, 9013387535
E-mail : akhandpublishinghouse@gmail.com
akhandpublishing@yahoo.com
Website : www.akhandbooks.com


**lekt ,oa laLÑfr**
**e/; xxk dk enku e ¼800&1200½ b- lu**


संस्करण : 2019


© लेखक


ISBN: 978-93-88998-10-9



सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से को प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इलेक्ट्रॉनिक या किसी अन्य माध्यम द्वारा पुनः प्राप्ति समेत किसी भी रूप में प्रतिलिपिकृत, अनुवादित, संगृहीत नहीं किया जा सकता है और न ही किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम द्वारा इसे प्रसारित किया जा सकता है।

इस पुस्तक में लेखक द्वारा व्यक्त विचार उनके व्यक्तिगत हैं जिसका प्रकाशक से कोई संबंध नहीं है।


**Hkkjr esa izdkf'kr**


झपसू यादव द्वारा 'अखण्ड पब्लिशिंग हाउस' के लिए प्रकाशित। वी.एम. ग्राफिक, दिल्ली द्वारा कवर डिजाइन व शब्द संयोजन तथा वी.एम. ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली से मुद्रित।



SAMPLE COPY

# ijkokd

गंगा और उसकी सहायक नदियाँ भारतीय भूमि में सांस्कृतिक संरचना का आधारभूत स्रोत रही हैं। इनसे सिंचित विशाल मैदान जो निःसन्देह प्रागैतिहासिक काल में यहाँ मौजूद रहे घने वनों को साफ कर कृषि उत्पादन के लिए तैयार किया जाता रहा, इस उपमहाद्वीप में स्थाई समाज के विकास का स्वाभाविक केन्द्र बना। कृषि उत्पादन की सुगमता ने स्थिर ग्रामीण बस्तियों के निर्माण को प्रेरित किया और ऐसे सामाजिक वर्गो के वंशानुगत श्रेणीक्रम को भी निर्मित किया जो परंपरागत प्रभुता या दीनता का भी माध्यम बनें। साथही प्रारंभिक दौर में सभ्यतागत परिवर्तनों के साथ उत्पन्न होने वाली विसंगतियों पर चिंतन और मंथन की परंपराएँ भी अस्तित्व में आयी। यहीं से भारतीय संस्कृति की प्रमुख धाराएँ ब्राह्मण, बौद्ध, जैन इस उपमहाद्वीप में सम्पूर्ण दिशाओं में पहुँची। इस दृष्टि से ही इस क्षेत्र को भारत के हृदय स्थल के रूप में देखा जाता रहा है।

भारत का राजनीतिक इतिहास भी इस भू–खण्ड पर स्थापित सत्ता को श्रेष्ठतम सत्ता के रूप में प्रतिस्थापित करता दिखाई देता है। कम से कम भारत के प्राचीन इतिहास के अवसान और मध्यकालीन प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि के निर्माण के समय तक सर्वोच्च राजनीतिक प्रतिष्ठा अर्जित करने के लिए इसका महत्व बराबर बना रहता है। इस सन्दर्भ में पूर्वमध्यकाल यथा हर्षोत्तर काल से लेकर दिल्ली में तुर्की सल्तनत की स्थापना के बीच इस क्षेत्र में घटित राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक गतिविधियाँ भारत के भविष्य के लिए अत्यंत महत्व का विषय बनती है, जिसमें कन्नौज और फिर काशी पर अधिकार करने और रखने के संघर्ष का इतिहास तो रहा ही है, इस क्षेत्र में इस कालखण्ड में स्थापित एवं पोषित रही सामाजिक–धार्मिक संस्कृति पर ध्यान जाना स्वाभाविक हैं। कारण बहुत प्रगट है, कन्नौज के लिए संघर्षरत रहे प्रतिहारों, राष्ट्रकूटों और पालों में अधिक प्रभावी और दीर्घकालिक रही प्रतिहारों की सत्ता द्वारा उस सामाजिक, धार्मिक संस्कृति का ही

SAMPLE

संरक्षण और पोषण होता रहा जिसे कालांतर में भारत की प्रधान संस्कृति के रूप में जाना गया। क्रमशः इस क्षेत्र में इन बड़ी सत्ताओं के विखंडन में निहित सांमतीय प्रक्रिया से उत्पन्न हुई राजनीतिक शक्तियों यथा गहड़वालों, चन्देलों और कलचुरियों को भी मध्य गंगा की घाटी में उसी परंपरा को संरक्षण और प्रोत्साहन देते देखा जाता है। इस क्षेत्र से प्राप्त होने वाले अभिलेख जिसमें विशेषतया दानपत्र और प्रशस्तियाँ हैं बहुधा उन्हीं सामंती–सांस्कृतिक लक्षणों को अभिव्यंजित करती हैं। कमोवेश ये सांस्कृतिक लक्षण सिर्फ अभिलेखों तक ही सीमित न रहते हुए कलात्मक अभिव्यक्तियों का भी अतिक्रमण करते हुए देखे जाते हैं। यह जानना रोचक है कि इसी क्षेत्र में उत्पन्न एवं प्रभावी हुए बौद्ध और जैन धर्मों का इस क्षेत्र से विलोपन का भी काल यही रहा। साथही भारत की सामाजिक–संस्कृति में प्रगट होने वाली रूढ़िवादिता के लक्षण भी यहाँ प्रगट हुए। इस सन्दर्भ में यह विचारणीय है कि सामाजिक–संस्कृति में पैठ रही संकुचन या संकीर्णता की प्रवृत्ति का संबंध कदाचित् इस बात से भी रहा हो कि इस काल और क्षेत्र में जहाँ एक ओर व्यापारीय और व्यावसायिक गतिविधियों का क्षय होता और नगरों का पतन होता दिखाई देता है वहीं कृषि–केन्द्रित जीवन पद्धति और उस पर सामंती नियंत्रण की प्रधानता स्थापित होती है, जबकि इसी काल में भारत के तटीय और प्रायद्विपीय क्षेत्रों में व्यापार और नये नगरों के निर्माण के लक्षण बने रहते हैं।

अतः मध्य गंगा के मैदान के सामाजिक–सांस्कृतिक स्वरूप और प्रवृत्तियों को अध्ययन का विषय बनाकर डॉ. आनन्द कुमार यादव ने भारतीय इतिहास की काल क्षेत्राधीन चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। राजनीतिक सत्ता और समाज के परस्पर प्रभावों और संबंधों को इस सन्दर्भ में देखना इसे और भी कौतुहल प्रदान करता है। इस दृष्टि से राजनीतिक सत्ताओं द्वारा निर्गत अभिलेख और दानपत्रों को प्रमाणिक साक्ष्यों के रूप में उपयोग में लाना अत्यन्त आवश्यक रहा हैं। पुनः इनके द्वारा संरक्षित और प्रोत्साहित सामाजिक धार्मिक साहित्य की वस्तुपरक अभिव्यक्ति के रूप में कला और स्थापत्य की प्रकृति और संरचना को भी समझना अनिवार्य है। प्रस्तुत पुस्तक में इन दोनों ही बातों का समावेश हुआ दिखाई देता हैं जो इस काल की इतिहास की समझ के लिए बड़ी कसौटी है।

भारतीय समाज की जातीय संरचना उसमें निहित श्रेणिक्रम, निषेध और वर्जनाएँ और उसमें धार्मिक प्रतिरोपण यह सभी कुछ इस काल और क्षेत्र के

इतिहास से अपृथकीय है। सामाजिक संरचना जो सिद्धान्तः वर्णक्रम पर आधारित थी, उसका व्यावहारिक पक्ष जातीय श्रेष्ठता पर अवलम्बित था और यह सब किसी न किसी प्रकार से श्रम की श्रेष्ठता या हीनता को ही लक्ष्य करते थे। व्यापारिक गिरावट की दशा में यह स्थितियाँ बखूबी स्पष्ट होती हैं, जब ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यों की स्थितियाँ हीन होने पर शूद्रों को शूद्रातिशूद्र, अंत्यज, अस्पृश्य, अछूत तक की श्रेणियों में परिगणित किया जाने लगा। इसे राजनीतिक सत्ताओं द्वारा लगातार पोषित किया जाता रहा। कदाचित् यह उस सामंतीय समाज की अन्तर्निहित परिणिति ही थी जिससे न तो उस काल की राजनीति और न ही धार्मिक चिंतन ही अलग रह सके। उल्लेखनीय है कि आदिगुरु शंकराचार्य के अद्वैतवादी दर्शन के बावजूद जातीय ऊँच–नीच और भेदभाव के परिष्करण का कोई धार्मिक व्यवहार प्रस्तावित नहीं किया जा सका। राजवंश और सत्ताएँ बदलती रहीं, परन्तु उन प्रवृत्तियों को स्वीकार लेना या उनके सहारे ही सत्ता में बने रहना जैसे इस काल और क्षेत्र की स्वाभाविक नियति बनी रही, जिसे तुर्की सल्तनत की स्थापना ने और भी प्रतिरक्षात्मक, संकुचित और रूढ़िग्रस्त होने का ही अवसर पैदा किया। मध्यकालीन संतों की वाणियों में यह छटपटाहट प्रकट रूप से दिखाई देती है और जिसे आधुनिक काल की चेतना द्वारा ही खुली चुनौती दिया जाना संभव हो सका।

**Mk- eg'k foØe**
पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रस्तुत ग्रंथ 'समाज एवं संस्कृति– मध्यगंगा के मैदान में' (800ई0 से 1200ई0) मेरे मेधावी शिष्य डॉ. आनन्द कुमार यादव की प्रस्तुति है। भारतीय इतिहास में यह कालखण्ड 'पूर्वमध्यकाल' के नाम से जाना जाता है। यद्यपि इसकी कोई निश्चित अथवा निर्धारित तिथि या समयावधि नहीं है। प्रायः परवर्ती गुप्तकाल से कतिपय विशिष्ट सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियां विकसित होती हैं जो प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित करती हैं। दूसरी ओर राजनीतिक स्थायित्व के प्रयोजन से जनजातीय क्षेत्रों में ब्राह्मणीकरण और संस्कृतिकरण की प्रक्रिया तीव्रतर होती है। इस काल में वृहद पैमाने पर स्थानीय जनजातीय समूहों का विशेषकर शूद्र वर्णान्तर्गत आत्मसात्करण होता है। वाममार्गी विचारधारा ब्राह्मणी व्यवस्था के विरूद्ध चुनौती के रूप में प्रबल होती है जिसकी

प्रतिक्रिया में रूढ़िवादिता और जातिगत कठोरता बढ़ती है। यद्यपि इसी दौर में धर्म के क्षेत्र में व्यापक पैमाने पर लघु परम्परा के धार्मिक तत्वों को बृहद परम्परा में आत्मसात किया जाता है ताकि एक सार्वभौम समाकलित संस्कृति का सृजन संभव हो। इन्हीं तथ्यों को लेखक ने पुरातात्विक और अभिलेखिक साक्ष्यों के माध्यम से परखने का प्रयास किया है।

आशा है उनका यह ग्रन्थ इस कालखण्ड पर शोध करने वाले छात्रों और सुविज्ञ पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

**डॉ. राघवेन्द्र पांथरी**
पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

नमूना • SAMPLE

# iLrkouk

पौराणिक ब्राह्मणीय संस्कृति, जो मूलतः वैदिक संस्कृति का ही प्रसार थी, के पल्लवन–पुष्पवन के मूल में मध्य गंगा के मैदान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। इसकी द्रोणी में स्नान–दान, तीर्थ, व्रत, पर्व आदि जैसे विचारों को मज़बूती मिलती नज़र आती है। अत्यधिक उपजाऊ होने के कारण भारत की एक बड़ी जनसंख्या का निवास, भरण–पोषण तथा अतिरिक्त उत्पादन इस क्षेत्र से होता रहा है। प्रस्तावित कालखण्ड ई. सन् 800–1200 के दौरान यह क्षेत्र राजनीतिक अस्थिरता जैसी समस्याओं से ग्रसित था। इसकी शुरूआत लगभग हर्षवर्धन के पश्चात् ही प्रारम्भ हो चली थी। कन्नौज पर अधिकार कर लेने के ध्येय से हुआ त्रिपक्षीय संघर्ष विवेचित कालखण्ड की सबसे बड़ी घटना थी। लगभग सभी छोटी–बड़ी शक्तियों के लिए कन्नौज प्रतिष्ठा का विषय बन चुका था। मुस्लिम आक्रमणों ने स्थिति को और बदहाल किया। रूढ़िगत होती जाति व्यवस्था, अकर्मण्यता की स्थिति, गतिविहीन समाज, ब्राह्मणीय संस्कृति तथा श्रमणीय विचारधारा का टकराव, सामंतवादी लक्षण आदि को इस काल की विशेषता के रूप में जाना जाता है।

इन विषम एवं अशांत परिवेश में भी अभिलेखों का लेखन एवं कला संबंधी निष्पादन निर्बाध गति से चल रहा था। इन समकालीन पुरातात्विक सामग्रियों में सामाजिक–सांस्कृतिक सन्दर्भ पर्याप्त रूप से प्रतिबिम्बित है, जिसे प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से विवेचित करने का प्रयास किया गया है। अभिलेखों का स्वरूप मुख्य रूप से प्रशस्यात्मक तथा दानात्मक है जबकि कला के अन्तर्गत विशेषतः पाषाण–शिल्प से सन्दर्भ लिया गया है।

अध्ययन को पूर्ण करने में हमें मूल रचनाओं के अलावा जिनकी कृतियों से प्रत्यक्ष सहायता मिली उनमें रामशरण शर्मा, डी. डी. कोसंबी, रोमिला थापर, आर.

SAMPLE

एन. नन्दी, बी. एन. एस. यादव, क्रैमरिश स्टेला, आंनद कुमार स्वामी, ई. बी. हैवेल, नीहार रंजन राय, बी. सी. भट्टाचार्य, वासुदेवशरण अग्रवाल, राघवेन्द्र पांथरी, महेश विक्रम सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इन सभी विद्वत्जनों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा पुनीत कर्तव्य है, जिनसे मैं लाभान्वित हुआ।

इसके अलावा वी. वी. मिराशी, प्रशांत कश्यप, ओंकार नाथ सिंह, मारूति नंदन तिवारी से भी सन्दर्भों के लिए सहायता मिली। कला साक्ष्यों के लिए उपर्युक्त के अलावा भारत कला भवन, इलाहाबाद संग्रहालय, नालंदा संग्रहालय, पटना संग्रहालय, लखनऊ संग्रहालय, सारनाथ संग्रहालय में प्रदर्शित कला अनुकृतियों का प्रयोग किया गया। इस कार्य में डी. पी. शर्मा का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

आदरणीय गुरु प्रो. महेश विक्रम सिंह, पूर्व अध्यक्ष इतिहास विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ जिनके मार्गदर्शन में यह कार्य पूर्ण हो पाया। मेरे लिए यह गौरव एवं संतोष की बात है कि मुझे ऐसे समर्पित शिक्षक का सान्निध्य प्राप्त हुआ। प्रो. राघवेन्द्र पांथरी, पू. अध्यक्ष इतिहास विभाग महात्मा गाँधी काशी विघापीठ प्रो. चारुशील सिंह, अंग्रेजी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, प्रो. डी. के. ओझा, प्रो. ओ. एन. सिंह, प्रो. सुमन जैन, प्रा. भा. इ. एवं पुरातत्व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से मुझे निरंतर प्रेरणा मिलती रही। विभाग के अन्य सभी शिक्षकों का भी मैं आभारी हूँ जिनसे मुझे मार्गदर्शन मिलता रहा।

पूज्य माता–पिता के आशीर्वाद के अलावा छोटे भाइयों का भी आभारी हूँ जिनके अविरल स्नेह ने मुझे संबल दिया। पत्नी, पुत्री एवं पारिवारिक सदस्यों को यथायोग्य। उन मित्रों और सहयोगियों को भी मैं अपना आभार ज्ञापित करता हूँ जिनसे किंचित भी मुझे सहायता प्राप्त हुई।

**डॉ. आनन्द कुमार यादव**

# fo"k;&lph


| | | |
|---|---|---|
| | *पुरोवाक्* | *v* |
| | *प्रस्तावना* | *ix* |
| | *शब्द संक्षेप* | *xi* |
| | *मानचित्र, तालिका, रेखाचित्र एवं फलक* | *xiii* |
| 1. | पूर्वमध्यकालीन सामाजिक – सांस्कृतिक इतिहास लेखन एवं स्रोत | 1 |
| 2. | भौगोलिकी एवं सांस्कृतिक विकास | 9 |
| 3. | राजनीतिक प्रतिस्पर्धा | 18 |
| 4. | सामाजिक संरचना | 31 |
| 5. | धार्मिक विचारधाराएँ | 78 |
| 6. | सांस्कृतिक जीवन | 112 |
| 7. | उपसंहार | 167 |
| | *ग्रंथ सूची* | 174 |
| | *अनुक्रमणिका* | 185 |


NCERT SAMPLE

नमूना • SAMPLE

# 'kCn lwph

| | | |
|---|---|---|
| आ. ध. सू. | – | आपस्तम्ब धर्म सूत्र |
| ए. इ. | – | एपिग्रैफिया इंडिका |
| का. इ. इ. | – | कार्पस इन्सक्रिप्शन इण्डिकेरम |
| कै. हि. इ. | – | कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया |
| कृ. ब्र. | – | कृत्यकल्पतरु ब्रह्मचारी काण्ड |
| कृ. रा. | – | कृत्यकल्पतरु राजधर्म काण्ड |
| कृ. व्य. | – | कृत्यकल्पतरु व्यवहार काण्ड |
| गा. का. इ. | – | गाहड़वालों का इतिहास |
| गौ. ध. सू. | – | गौतम धर्मसूत्र |
| ज. ए. सो. | – | जर्नल ऑव एशियाटिक सोसाइटी |
| जी. ओ. एस. | – | गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज |
| दे. भा. पु. | – | देवी भागवत पुराण |
| ध. का. इ. | – | धर्मशास्त्र का इतिहास |
| नै. | – | नैषधीयचरित् |
| प्रा. भा. सा. प. | – | प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन |
| बौ. ध. सू. | – | बौधायन धर्मसूत्र |
| भा. की पु. | – | भारत की पुनर्खोज |
| मनु. | – | मनुस्मृति |
| याज्ञ. | – | याज्ञवल्क्य स्मृति |
| वसि. | – | वसिष्ठ स्मृति |
| वि. सं. | – | विक्रम संवत् |
| श. ब्रा. | – | शतपथ ब्राह्मण |
| से. इ. | – | सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन |
| सो. ए. क. ना. इ. | – | सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया |

SAMPLE

नमूना • SAMPLE

# ekufp=] rkfydk] j[kkfp= ,oa Qyd

## ekufp=


1. मध्य गंगा का मैदान — पृ. 10
2. मध्य गंगा के मैदान की प्राकृतिक संरचना — पृ. 13


## rkfydk


1. गाहड़वाल अभिलेखों के आधार पर ज्ञात होने वाले ब्राह्मणों के गोत्र एवं प्रवर — पृ. 34, 35
2. मध्य गंगा के मैदान से संबंधित राजवंशों द्वारा जारी किये गये सिक्कों की सूचना — पृ. 140–143


## j[kkfp=


1. उत्तर भारतीय विकसित मन्दिरों की तल योजना — पृ. 156 क, ख
2. विविध अंगों पर धारण किए जाने वाले आभूषण — पृ. 160–162


## Qyd


1. सिर पर मुकुट एवं गले में हार पहने महात्मा बुद्ध — पृ. 86
2. बौद्ध देवी तारा — पृ. 88
3. नीलकण्ठ अवलोकितेश्वर, — पृ. 89
4. त्रैलोक्यविजय — पृ. 90


SAMPLE

| | | |
|---|---|---|
| 5. | अपराजिता | पृ. 91 |
| 6. | विश्वरूप विष्णु | पृ. 97 |
| 7. | आदिकेशव मन्दिर | पृ. 99 |
| 8. | सूर्य | पृ. 102 |
| 9. | वाराही, वैष्णवी, इन्द्राणी, अर्धनारीश्वर, महिषासुरमर्दिनी | पृ. 105,106, |
| 10. | ब्रह्मा | पृ. 108 |
| 11. | नृत्यरत गणेश की प्रतिमा | पृ. 111 |
| 12. | कर्मदेश्वर मन्दिर, वाराणसी व दान दिये जाने वाले छोटे मन्दिर | पृ. 118, 119, |
| 13. | शिव–परिवार व विष्णु अनुचरों के साथ | पृ. 152–153 |
| 14. | प्रागइतिहासकालीन बोझ उठाये स्त्री एवं सजावट वाली स्त्री अनुकृतियाँ | पृ. 158–159 |
| 15. | हरिहर | पृ. 166 |


नमूना • SAMPLE

# 1

# पूर्वमध्यकालीन सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास लेखन एवं स्रोत

राजनीतिक इतिहास लेखन की ही तरह भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास लेखन का संबंध भी अंग्रेजों के औपनिवेशिक प्रसार के साथ जुड़ा रहा। अपनी नीतियों व प्रशासन को उचित ठहराने के ध्येय से तथ्यों की व्याख्या साम्राज्यवादियों ने अपने अनुकूल की। जेम्स मिल द्वारा भारतीय इतिहास का साम्प्रदायिक काल विभाजन अंग्रेजों की उपर्युक्त नीतियों का परिणाम रहा। यद्यपि साम्राज्यवादी इतिहासकारों को राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों द्वारा चुनौति मिल रही थी, परंतु अंग्रेजों द्वारा भारतीय इतिहास के काल विभाजन के समुचित उत्तर राष्ट्रवादी इतिहासकारों के पास नहीं थे। इन सबके विपरीत दिशा में लेखन कार्य करने वालों में पहला नाम दामोदर धर्मानंद कोसंबी का आता है जिन्होंने अपने लेखन से यह स्पष्ट किया कि इतिहास की जिन प्रवृत्तियों से हम परिचित होते हैं वह किसी काल खण्ड प्राचीन, मध्यकालीन अथवा आधुनिक की अपेक्षा उत्पादन के संसाधनों एवं संबंधों का उत्तरोत्तर सिलसिलेवार प्रस्तुतिकरण है। यथा प्राचीन से मध्यकाल में यकायक परिवर्तन की अपेक्षा यह पूर्वमध्यकालीन संक्रमणशील स्थितियों से गुजरा। भारतीय सन्दर्भ में मार्क्सवादी इतिहास लेखन और पूर्वमध्यकाल के संबंध अत्यंत गहरे हैं। पर्याप्त रूप से प्रभावित करने वाली विचारधारा सामंतवाद का स्वरूप मार्क्सवादी इतिहास लेखकों के कारण ही स्पष्ट हो पाया। इस व्यवस्था के अपने राजनीतिक और सामाजार्थिक लक्षण देखे गये जिनका खण्डन और कई बार निष्पक्ष अध्ययन देखने को मिलता है। यद्यपि इस कालखण्ड पर इसके पूर्व सी. वी. वैद्य की 'हिस्ट्री ऑव हिन्दू मिडिवल इण्डिया' गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' (600–1200) व 'राजपूताने का इतिहास' बी. एन. पुरी की 'हिस्ट्री ऑव गुर्जर प्रतिहार' भारतीय विद्या भवन की दो जिल्दें 'द एज ऑव इम्पीरियल कन्नौज' और 'स्ट्रगल फॉर एम्पायर' आदि रचनाएँ हैं। सूचनाओं के

दृष्टिकोण से ये रचनाएँ उत्कृष्ट हैं जिनमें बहुधा साहित्यिक स्रोतों के साथ ही उपलब्ध रहे अभिलेखीय साक्ष्यों का प्रयोग किया गया। राजाओं की राजनीतिक उपलब्धियों के साथ उनके प्रशासन, वंशानुक्रम आदि पर विशेष बल देखा जा सकता है। यथोचित इन शासकों द्वारा अपनाये गये धर्म, इससे सम्बन्धित वास्तुगत निर्माण आदि पर प्रसंगवश प्रकाश पड़ता है।

पूर्वमध्यकाल की विशेषता रहे सामंतवाद की अवधारणा की पहली झलक हमें डी. डी. कोसंबी की कृति 'द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑव एनशिएण्ट इण्डिया' के अंतिम अध्याय 'टुअर्ड्स फ्यूडलिज्म' में देखने को मिलता है।[1] इस अवधारणा के विकास में इन्होंने जिन बातों पर बल दिया है वह है भूमिदान की परिपाटी, जो बहुधा नये पुरोहित वर्ग के विकास के साथ प्रचलित दिखायी पड़ती है। बदलती हुई आर्थिक, राजनीतिक स्थितियाँ, व्यापारिक ह्रास की ओर भी इन्होंने संकेत किया है जिससे एक बन्द ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिला। इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में इन्होंने बताया कि कैसे सामाजिक सम्बन्धों को आर्थिक स्थितियाँ प्रभावित करती हैं। किस प्रकार नये भौतिक परिवेश में नये सामाजिक नियमों को सन्तुलित करने का प्रयास चलता है। अपने अध्ययन से स्पष्ट किया कि प्रारम्भ में समाज आदिम स्वर्णयुग में था। व्यक्तिगत सम्पत्ति की अपेक्षा सामूहिक सम्पत्ति का महत्व था। इसका कारण उत्पादन और श्रम में समान सहभागिता थी। तत्पश्चात् आर्थिक जीवन में जटिलताएँ बढ़ना प्रारम्भ होती हैं। कृषि के प्रारम्भ के साथ ही क्रान्तिकारी परिवर्तन शुरू होते हैं। लोगों का जीवन जो यायावर और घुमन्तू था, स्थायित्व प्राप्त कर लेता है। कृषि पर आधारित नये प्रकार के उद्योग और इनसे सम्बन्धित श्रमिकों का विकास होता है। अधिशेष उत्पादन ने नगरीय सभ्यता को जन्म दिया। नये प्रकार की विकसित इस आर्थिक प्रणाली में अब ऐसे धर्म की आवश्यकता महसूस की जा गयी जो इन बदली हुई स्थितियों के पोषण में सहायक हो। बौद्ध धर्म का मध्यममार्गी दर्शन इन स्थितियों का समाधान प्रस्तुत करता था। सम्पन्न वर्गों के रक्षार्थ मगध पर पूर्ण राजनीतिक नियंत्रण स्थापित होता है। इन स्थितियों से उभरे नये पुरोहित वर्ग को अब सुविधाओं की आवश्यकता थी। इसकी क्षतिपूर्ति भूमि अनुदानों के माध्यम से पूरी की जाती है, जिसके व्यापक सामाजार्थिक प्रभाव परवर्ती कालों में दिखाई पड़े। धीरे–धीरे समाज आदिम साम्यवाद से शोषणयुक्त सामंतवाद की ओर अग्रसर हो जाता है। अपने लेखन में स्रोतों के लिए

1. कोसंबी, डी. डी.; द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑव इंडिया, बाम्बे, 1970

कोसंबी ने पुरातत्व, कुछ अभिलेख, गुफाओं के चित्र, समाधियों का निरीक्षण, मिथकों की वास्तविक व्याख्या आदि का सहारा लिया है, जिनकी समझ सामान्य स्तर पर मुश्किल होती।

डी. डी. कोसंबी द्वारा प्रस्तावित विषय 'सामंतवाद की ओर' का विस्तृत स्वरूप रामशरण शर्मा की पुस्तक 'इण्डियन फ्यूडलिज्म'[2] में देखने को मिलता है। इस पुस्तक के निष्कर्ष में इन्होंने लिखा कि राजनीतिक सामंतवाद के उद्भव और विकास का इतिहास ई. सन् की पहली शताब्दी से ब्राह्मणों को दिये जाने वाले भूमि अनुदान से जुड़ा है। भूमि अनुदान करने की यह प्रवृत्ति गुप्तकाल के बाद क्रमशः बढ़ती ही जाती है। अपने तथ्यों की पुष्टि के लिए रामशरण शर्मा, पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूटों द्वारा ब्राह्मणों को दिये जाने वाले भूमि–अनुदान सम्बन्धी अभिलेखों का सहारा लेते हैं। कलचुरि और गाहड़वाल अभिलेखों के प्रमाण से यह बताते हैं कि इन शासकों के काल तक आते–आते भूमिदान के साथ ही उसके प्रशासनिक अधिकार भी दान प्राप्तकर्ता को मिलने लगता है। यहाँ तक कि उस भूमि के कृषक, शिल्पी, खदानें सब पर प्राप्तकर्ता के अधिकार हुए, जिसकी निश्चितता सूर्य–चाँद के रहने तक स्थिर की गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि इन भूमियों पर कार्य करने वाले कृषक–मजदूर अब केवल उत्पादक ही रह गये। छोटे कृषकों से लगान और कर की शोषणयुक्त उगाही से उनकी स्थिति बदतर हुई। रामशरण शर्मा अपने दूसरे शोध 'नगरों का पतन' में इस बात का सुझाव देते हैं कि इस समय वैदेशिक व्यापार की दशा में गिरावट आयी।[3] सिक्कों की अत्यल्प प्राप्ति से भी इस बात को समझा जा सकता है। यही वजह रहा कि अब सैन्य अधिकारियों को नकद वेतन के बदले भूमि प्रदान की गयी। ऐसी स्थिति में शिल्पियों और व्यापारियों की दशा भी दयनीय हुई। इन्हें गाँवों की ओर उन्मुख होना पड़ा। संभवतः यही वजह रही होगी कि अलबरूनी वैश्यों और शूद्रों में बहुत ज्यादा अन्तर नहीं देख पाता। रामशरण शर्मा गाँवों का स्वरूप आत्मनिर्भर बन्द अर्थव्यवस्था के रूप में देखते हैं, जिनका नियमन भूमि–प्राप्त ब्राह्मणों के माध्यम से ही सम्भव हुआ। राजनीतिक स्तर पर सामंती व्यवस्था होने के कारण सामाजिक– सांस्कृतिक प्रभावों की स्थिति रामशरण शर्मा अपनी अगली कृति 'पूर्व मध्यकालीन समाज और संस्कृति' में स्पष्ट करते हैं कि नगर और व्यापार के पतन की स्थिति से भू अनुदान की प्रथा मेल खाती

2. शर्मा, रामशरण; इण्डियन फ्यूडलिज्म

3. शर्मा, रामशरण; अर्बन डिके इन इण्डिया (300–1000), दिल्ली, 1987

SAMPLE

है। पुराणों में आये कलियुग के विषय के आधार पर वो सुझाव देते हैं कि उस समय का सामाजिक संगठन चरमरा रहा था जिससे सामाजिक विघटन जैसी स्थितियाँ बन पड़ती हैं। सामंती प्रभाव के कारण जाति संगठन पर पड़ने वाले प्रभावों को भी इन्होंने रेखांकित करने का प्रयास किया है। यहाँ इन्होंने दिखलाया है कि वैश्य और शूद्र की स्थितियों में क्या–क्या उतार चढ़ाव और कैसे हुए। शूद्र कृषक और अन्य वर्णों की उपजातियाँ कैसे बढ़ी? कायस्थ और राजपूत जैसे सामाजिक वर्गों के उद्‌भव पर प्रकाश के साथ ही जाति प्रथा की संस्तरीयता के कारणों पर भी लेखन किया है। न केवल सामंतवाद की स्थितियाँ ही बल्कि इन्होंने भू–स्वामियों और किसानों के बीच बढ़ रहे तनावों और संघर्षों की गुंजाइश की ओर भी इशारा किया। शर्मा स्पष्ट करते हैं कि हमें भारत में किसानों के संगठित विरोध या विद्रोह नहीं मिलता, किन्तु उनके विरोध और यदा–कदा विद्रोह का अभाव नहीं है। इन्होंने कृषकों के भयंकर प्रतिकारों का विवेचन करते हुए बतलाने की चेष्टा की है कि क्या उनके पीछे कोई धार्मिक विचारधारा कार्य कर रही थी या विद्रोह या विरोध उन इलाकों में हुए जिनका ब्राह्मणीकरण ठीक से नहीं हुआ। इस पुस्तक के नवें अध्याय 'तंत्र की सामाजार्थिक पृष्ठभूमि' में इन्होंने तंत्र धर्म के उदय और उसके संगठन के व्यापक कारणों के साथ ही उसके तत्कालीन महत्व पर प्रकाश डाला है कि किस प्रकार यह सम्प्रदाय सामंती स्थितियों में अपनी उपादेयता बनाये रखा। प्रभुतासम्पन्न भू–स्वामियों के विचारों और मनोवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक परीक्षण इन्होंने इस पुस्तक के अंतिम अध्याय 'सामंती मानसिकता' में करने का प्रयास किया है। इस अध्ययन के माध्यम से इन्होंने कला और साहित्य के सृजन के पीछे के निहितार्थों को समझने का प्रयास किया है। इनके अध्ययन में स्रोतों का दायरा विस्तृत दिखायी पड़ता है। ब्राह्मणीय साहित्य के साथ ही इन्होंने यथासम्भव बौद्ध एवं जैन साहित्य–ग्रंथों का प्रयोग किया है। उद्‌वाचित हो चुके अभिलेखीय साक्ष्यों के अलावा इन्होंने मुद्राशास्त्र एवं पुरातात्विक उत्खनन रिपोर्टों का भी प्रयोग उपलब्धता के आधार पर किया है।

इस कालखण्ड के विषय में रामशरण शर्मा से भिन्न विचार रखने वाले लेखक बी. डी. चट्‌टोपाध्याय का महत्वपूर्ण लेख है 'स्टेट एण्ड इकॉनामी इन नार्दन इण्डिया' (400–1200)। इस शोध लेख का प्रकाशन रोमिला थापर द्वारा संपादित पुस्तक 'रिसेण्ट पर्सपेक्टिव ऑव अर्ली इण्डियन हिस्ट्री'[4] में किया गया। इस लेख

4. थापर, रोमिला रिसेण्ट पर्सपेक्टिव ऑव अर्ली इण्डियन हिस्ट्री, दिल्ली, 1995

के माध्यम से बी. डी. चट्टोपाध्याय ने पूर्वमध्यकालीन सामंतवाद की स्थिति, सामाजिक सम्बन्धों, नगरों की स्थिति आदि का पुनर्विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि इस काल में राजनीतिक व वाणिज्यिक केन्द्रों के रूप में नये नगरों का उदय होता है। अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर ये बताते हैं कि नौवीं सदी से राजस्थान और गुजरात के क्षेत्र में ऐसे नगर उभरे जो अन्तर्देशीय स्तर पर व्यापारिक क्रियाओं में सक्रिय थे। ये गुप्तोत्तरकालीन मुद्राविहीन बन्द ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी अस्वीकार करते हैं। यद्यपि वे इस तथ्य पर अपनी सहमति जताते हैं कि अधिकांश नगरों का संबंध पूर्वमध्यकाल के उत्तरार्ध से ही है। स्पष्ट है कि ऐसे नगर राजपूतों के उदय और नये क्षेत्रों में प्रसार के साथ ही देखे जाते हैं। इससे पूर्व तक उनका कोई अस्तित्व न था और न ही वैदेशिक व्यापार से कोई सम्बन्ध ही रहा। इसी प्रकार हरिवंश मुखिया द्वारा संपादित ग्रंथ 'फ्यूडलिज्म और गैर यूरोपीय समाज' में प्रकाशित शोध आलेख 'क्या भारतीय इतिहास में फ्यूडलिज्म रहा है'[5] के माध्यम से भारत में सामंतवाद जैसी स्थितियों से असहमति जताया जाता हैं इनके अध्ययन का आधार यूरोपीय सामंतवाद की अवधारणा और उसके लक्षणों को भारतीय स्थितियों से तुलना करते हुए देखा जाना है।

बी. डी. चट्टोपाध्याय का खंडन डी. एन. झा ने अपनी पुस्तक 'भारतीय सामंतवाद'[6] में किया है। ये स्थितियों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि बी. डी. चट्टोपाध्याय के जो अभिलेख आधारित नगरों के प्रमाण हैं उनका संबंध नौवीं व दसवीं सदी से है और इस काल को नगरीकरण के तृतीय चरण के रूप में देखा जाता है, जबकि रामशरण शर्मा नगरों के अवसान का समय 400 ई. सन् से 1000 ई. सन् बताया है।

इस कालखंड एवं विशेषतः उत्तर भारत पर अध्ययन करने वाले विद्वानों में बी. एन. एस. यादव का कार्य 'सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरि'[7] एक आदर्श रचना मानी जाती है। इन्होंने इस ग्रंथ के माध्यम से जाति,

5. मुखिया हरवंश, वाज देयर फ्यूडलिज्म इन इण्डियन हिस्ट्री? द जर्नल ऑव पीजेंट स्टडीज वॉल्यूम 8 नं. 3, 1981
6. झा, डी. एन., फ्यूडल सोशल फॉरमेशन इन अर्ली इण्डिया, दिल्ली, 1987
7. यादव, बी. एन. एस.; सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द ट्वेल्थ सेन्चुरि, इलाहाबाद, 1975